



भारतीय ज्ञान परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन में हिंदी साहित्य की भूमिका

डॉ. छाया

सहायक प्राध्यापिका (हिंदी विभाग)

कॉलेज: निरंकारी बाबा गुरुबचन सिंह मेमोरियल महाविद्यालय, सोहना
मेल.आई.डी. drchhayaraghav@gmail.com | मोबाईल नंबर 7827066545

1. प्रस्तावना

भारत की सांस्कृतिक पहचान उसकी समृद्ध, बहुआयामी एवं दीर्घकालीन ज्ञान-परंपरा में निहित है। भारतीय ज्ञान-परंपरा केवल धार्मिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें दर्शन, साहित्य, भाषा, चिकित्सा, गणित, खगोलशास्त्र, योग, कला, संगीत, नीतिशास्त्र, लोकजीवन, सामाजिक चिंतन तथा प्रकृति के साथ मानव के संबंध से संबंधित विविध प्रकार के ज्ञान का समावेश है। यह ज्ञान-संपदा विभिन्न माध्यमों के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रही है। भारतीय ज्ञान-परंपरा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि इसमें ज्ञान को केवल पुस्तकीय अथवा सैद्धांतिक विषय न मानकर जीवन-व्यवहार से जोड़ा गया। गुरु-शिष्य परंपरा, मौखिक परंपरा, लोकगीत, लोककथाएँ, धार्मिक आख्यान, महाकाव्य, पुराण तथा विभिन्न साहित्यिक विधाओं ने ज्ञान के संरक्षण एवं प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारतीय चिंतन में विद्या को केवल सूचना या बौद्धिक संचय के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य के आत्म-विकास और जीवन-मूल्यों के निर्माण से जोड़कर देखा गया है। विष्णु पुराण में कहा गया है—

“सा विद्या या विमुक्तये।”¹

अर्थात् वही विद्या सार्थक है जो मनुष्य को बंधनों से मुक्त करने तथा उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो। इसी प्रकार भारतीय चिंतन की उदार एवं सार्वभौमिक दृष्टि महोपनिषद् के प्रसिद्ध श्लोक में दिखाई देती है—

“अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥”²

यह भाव समस्त मानव समाज को एक परिवार के रूप में देखने वाली भारतीय दृष्टि को अभिव्यक्त करता है।

हिंदी साहित्य का विकास भी इसी व्यापक भारतीय सांस्कृतिक एवं ज्ञान-परंपरा के मध्य हुआ है। हिंदी साहित्य ने भारतीय चिंतन, दर्शन, आध्यात्मिकता, नैतिक मूल्यों, लोकजीवन, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक स्मृतियों को प्रभावी अभिव्यक्ति प्रदान की। विशेष रूप से भक्तिकालीन साहित्य ने अनेक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों को लोकभाषा के माध्यम से सामान्य जन तक पहुँचाया। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य के विकास और उसकी लोक-संबद्धता पर विचार करते हुए भक्ति साहित्य को भारतीय समाज की व्यापक सांस्कृतिक चेतना से जोड़कर देखा है।³

आधुनिक हिंदी साहित्य ने भारतीय परंपरा को नए सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय संदर्भों में पुनर्परिभाषित किया। भारतेन्दु युग में भाषा और राष्ट्रीय चेतना का प्रश्न सामने आया, द्विवेदी युग में साहित्य को सामाजिक एवं नैतिक चेतना



से जोड़ा गया, छायावाद में व्यक्ति, प्रकृति और आत्मचेतना को नई अभिव्यक्ति मिली तथा प्रेमचंद, दिनकर, महादेवी वर्मा और अन्य रचनाकारों ने भारतीय समाज एवं संस्कृति के विविध पक्षों को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया। अतः हिंदी साहित्य को केवल मनोरंजन अथवा सौंदर्यबोध का माध्यम मानना उसके व्यापक स्वरूप को सीमित करना होगा। हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण, पुनर्स्मरण, पुनर्व्याख्या तथा संवर्धन का प्रभावी माध्यम रहा है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन में हिंदी साहित्य की भूमिका का विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि हिंदी साहित्य ने सत्य, अहिंसा, करुणा, समन्वय, सहिष्णुता, लोकमंगल तथा मानवतावादी दृष्टि जैसे मूल्यों को जनसामान्य तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह शोध मुख्यतः वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसके लिए हिंदी साहित्य के इतिहास, प्रतिनिधि साहित्यिक कृतियों, लोकसाहित्य तथा भारतीय संस्कृति से संबंधित प्रामाणिक ग्रंथों और द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

मुख्य शब्द: भारतीय ज्ञान-परंपरा, हिंदी साहित्य, सांस्कृतिक विरासत, लोकमंगल, जीवन-मूल्य, संत साहित्य, लोकसाहित्य, भारतीय ज्ञान प्रणाली, संस्कृति, संरक्षण, संवर्धन।

2. भारतीय ज्ञान-परंपरा : अवधारणा एवं स्वरूप

‘भारतीय ज्ञान-परंपरा’ एक व्यापक अवधारणा है। सामान्य अर्थ में इसे भारत में विकसित तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली ज्ञान-संपदा और जीवन-दृष्टि के रूप में समझा जा सकता है। इसमें केवल प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध ज्ञान ही नहीं, बल्कि लोकसमाज के अनुभवों, परंपराओं, आचार-विचार, कला, भाषा, चिकित्सा, कृषि, प्रकृति-बोध और सामाजिक व्यवहार से अर्जित ज्ञान भी सम्मिलित है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा की जड़ें वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, दर्शन-ग्रंथों तथा विभिन्न शास्त्रीय परंपराओं में दिखाई देती हैं। इसके साथ ही बौद्ध, जैन, सिद्ध, नाथ, भक्ति और लोक परंपराओं ने भी भारतीय चिंतन को समृद्ध किया। इस प्रकार भारतीय ज्ञान-परंपरा किसी एक धर्म, विचारधारा अथवा ग्रंथ तक सीमित न होकर विभिन्न विचारों, अनुभवों और जीवन-दृष्टियों का समन्वित रूप है।

इस परंपरा में ज्ञान को जीवन-मूल्यों से जोड़कर देखा गया है। सत्य, अहिंसा, करुणा, लोकमंगल, कर्तव्य, सह-अस्तित्व, आत्मानुशासन, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता तथा मानव मात्र के कल्याण जैसी अवधारणाएँ भारतीय चिंतन में निरंतर दिखाई देती हैं। इसी कारण भारतीय ज्ञान-परंपरा को केवल अतीत में सुरक्षित ज्ञान का भंडार न मानकर एक जीवंत सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में देखना अधिक उचित होगा।

भारतीय चिंतन की व्यापकता को निम्नलिखित श्लोक में भी देखा जा सकता है—

“अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥”²

यह श्लोक मनुष्य को संकीर्ण स्वार्थ से ऊपर उठकर व्यापक मानवता के साथ संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा में वेद, उपनिषद्, दर्शन, आयुर्वेद, गणित, खगोलशास्त्र, अर्थशास्त्र, योग, कला, संगीत तथा साहित्य जैसी अनेक ज्ञान-धाराएँ सम्मिलित रही हैं। अतः इसे केवल धार्मिक ज्ञान के रूप में देखना उचित नहीं होगा।



ज्ञान और कर्म के संबंध पर भी भारतीय परंपरा में विशेष बल दिया गया है। ज्ञान का उद्देश्य केवल जानना नहीं, बल्कि जीवन को अधिक सार्थक और नैतिक बनाना है। इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान-परंपरा में साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि साहित्य ज्ञान को अनुभव, संवेदना और जीवन-स्थितियों से जोड़कर जनसामान्य तक पहुँचाता है।

3. परंपरा का अर्थ एवं भारतीय ज्ञान-परंपरा

‘परंपरा’ का अर्थ किसी विचार, विश्वास, मूल्य, ज्ञान अथवा व्यवहार का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरण है। परंपरा केवल पुरानी रूढ़ियों का नाम नहीं है, बल्कि वह समाज द्वारा अनुभव और अभ्यास के आधार पर सुरक्षित किए गए विचारों, मूल्यों, कलाओं और जीवन-पद्धतियों का निरंतर प्रवाह है। भारतीय ज्ञान-परंपरा इसी निरंतर प्रवाह का परिणाम है।

वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारतीय ज्ञान-संपदा निरंतर विकसित होती रही है। किसी एक भाषा में परिवर्तन होने से ज्ञान-परंपरा समाप्त नहीं होती, बल्कि वह दूसरी भाषा और नए सांस्कृतिक संदर्भों में अपना नया रूप ग्रहण करती है। हिंदी साहित्य इसी निरंतरता का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

हिंदी ने पूर्ववर्ती भारतीय ज्ञान-संपदा को ग्रहण करके उसे लोकभाषा, कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत और अन्य साहित्यिक विधाओं के माध्यम से आगे पहुँचाया। इस प्रक्रिया में ज्ञान केवल सुरक्षित नहीं रहा, बल्कि बदलते समय के अनुरूप उसकी व्याख्या भी होती रही।

इस प्रकार परंपरा और परिवर्तन एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। किसी परंपरा की जीवंतता इस बात में निहित होती है कि वह बदलते समय के साथ संवाद करते हुए अपने मूल मानवीय तत्वों को सुरक्षित रखे। हिंदी साहित्य ने इसी संवाद को अनेक स्तरों पर संभव बनाया है।

4. भारतीय ज्ञान-परंपरा का संरक्षण : अर्थ एवं आवश्यकता

‘संरक्षण’ का सामान्य अर्थ किसी मूल्यवान वस्तु, विचार अथवा ज्ञान को सुरक्षित रखना और उसे नष्ट होने से बचाना है। भारतीय ज्ञान-परंपरा के संदर्भ में संरक्षण का अर्थ केवल प्राचीन ग्रंथों को सुरक्षित रखना नहीं है। इसका व्यापक अर्थ उन ज्ञान-विचारों, जीवन-मूल्यों, सांस्कृतिक स्मृतियों, लोकपरंपराओं और अनुभवों को सुरक्षित रखना है, जो भारतीय समाज की सामूहिक चेतना का निर्माण करते हैं।

ज्ञान तभी जीवंत रहता है, जब वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता है। भारत में प्रारंभिक समय से ही मौखिक परंपरा ज्ञान-संरक्षण का महत्वपूर्ण माध्यम रही है। स्मरण, श्रवण, कथन, आख्यान और गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से अनेक प्रकार के ज्ञान को सुरक्षित रखा गया। बाद में विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य के माध्यम से ज्ञान को स्थायी साहित्यिक स्वरूप प्राप्त हुआ।

हिंदी साहित्य ने भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण में विशेष भूमिका निभाई, क्योंकि हिंदी और उससे संबंधित लोकभाषाओं में रचित साहित्य की पहुँच व्यापक जनसमुदाय तक रही। धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विचारों को सरल एवं जनसुलभ भाषा में प्रस्तुत करके साहित्य ने उन्हें सामाजिक स्मृति का हिस्सा बनाया।



कबीर की वाणी इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होंने शास्त्रीय ज्ञान को लोकानुभव से जोड़ते हुए सत्य और आत्मबोध को महत्व दिया—

“साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदै साँच है, ताकै हृदय आप॥”⁴

यहाँ सत्य को सर्वोच्च नैतिक मूल्य के रूप में स्थापित किया गया है। इस प्रकार साहित्य केवल ज्ञान का संग्रह नहीं करता, बल्कि उसे स्मृति, अनुभव और सामाजिक व्यवहार का हिस्सा भी बनाता है।

5. भारतीय ज्ञान-परंपरा का संवर्धन : अर्थ एवं स्वरूप

संरक्षण के साथ ‘संवर्धन’ की अवधारणा को समझना भी आवश्यक है। संरक्षण जहाँ उपलब्ध ज्ञान को सुरक्षित रखने की प्रक्रिया है, वहीं संवर्धन का अर्थ उस ज्ञान को नए संदर्भों में विकसित करना, उसका विस्तार करना तथा उसे वर्तमान जीवन के लिए प्रासंगिक बनाना है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा स्थिर एवं जड़ परंपरा नहीं रही है। समय के साथ इसमें नए विचार जुड़ते रहे हैं और विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप इसकी पुनर्व्याख्या होती रही है। हिंदी साहित्य इसका महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

भक्त कवियों ने भक्ति, प्रेम, समता और मानवीयता के माध्यम से आध्यात्मिक चिंतन को नई सामाजिक दृष्टि प्रदान की। आधुनिक साहित्यकारों ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना को राष्ट्रीयता, सामाजिक सुधार, स्त्री-चेतना, दलित-चेतना और मानवतावाद जैसे आधुनिक विमर्शों से जोड़ा।

रहीम के नीति-दोहों में भी जीवनानुभव और सामाजिक व्यवहार का ज्ञान संक्षिप्त एवं प्रभावशाली रूप में मिलता है—

“रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाया।

टूटे से फिर न मिले, मिले गाँठ परिजाय॥”⁵

यह दोहा मानवीय संबंधों में प्रेम, विश्वास और संवेदनशीलता के महत्व को रेखांकित करता है। इसी प्रकार रहीम का एक अन्य दोहा सामाजिक समता और उपयोगिता की दृष्टि प्रस्तुत करता है—

“रहिमन देखि बडेन को, लघु न दीजिए डारि।

जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि॥”⁶

यहाँ प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु की अपनी उपयोगिता को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलती है। इस प्रकार नीति-काव्य भी भारतीय जीवन-ज्ञान के संरक्षण एवं संवर्धन का माध्यम बना।

6. हिंदी साहित्य : भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन का माध्यम

हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण और संवर्धन का प्रभावी माध्यम इसलिए बना, क्योंकि उसने ज्ञान को जनभाषा तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम से व्यापक समाज तक पहुँचाया। साहित्य की भाषा में प्रस्तुत विचार सहज रूप से लोकमानस में प्रवेश करते हैं और सामूहिक स्मृति का हिस्सा बन जाते हैं।



हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं—कविता, कथा, उपन्यास, नाटक, निबंध, जीवनी, आत्मकथा तथा लोकसाहित्य—ने भारतीय समाज के विविध पक्षों को अभिव्यक्त किया है। इनके माध्यम से भारतीय जीवन-मूल्य, सामाजिक अनुभव, धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिंतन, लोकपरंपराएँ और सांस्कृतिक स्मृतियाँ संरक्षित हुई हैं।

उपनिषद् का प्रसिद्ध आह्वान है—

“उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।”⁷

हिंदी साहित्य की भूमिका मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में देखी जा सकती है—

1. भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण।
2. दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों का लोकभाषा में प्रसार।
3. लोकपरंपराओं एवं लोकज्ञान का संरक्षण।
4. नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों का संप्रेषण।
5. भारतीय इतिहास और सांस्कृतिक स्मृति का संरक्षण।
6. परंपरा की नए संदर्भों में पुनर्व्याख्या।
7. सामाजिक चेतना एवं मानवीय मूल्यों का विकास।
8. भारतीयता एवं राष्ट्रीय चेतना का संवर्धन।
9. लोकभाषाओं एवं लोकानुभवों को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान करना।
10. भारतीय सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण में योगदान देना।

7. हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों में भारतीय ज्ञान-परंपरा का संरक्षण एवं संवर्धन

7.1 आदिकाल : परंपरा, वीरता और सांस्कृतिक स्मृति

हिंदी साहित्य के आदिकाल को हिंदी साहित्य के आरंभिक विकास का काल माना जाता है। इस काल के साहित्य में वीरता, धर्म, नीति, लोकविश्वास और तत्कालीन सामाजिक जीवन के विविध रूप दिखाई देते हैं। रासो साहित्य और अन्य रचनाओं में तत्कालीन समाज की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चेतना का प्रतिबिंब मिलता है। रामचंद्र शुक्ल ने आदिकालीन साहित्य के विवेचन में देशभाषा-काव्य, वीरगाथाओं और रासो साहित्य की चर्चा की है।⁸

वीरगाथाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज के आदर्श, शौर्य, कर्तव्य, प्रतिष्ठा और सामूहिक जीवन की धारणाएँ पीढ़ियों तक पहुँचती रहीं। *पृथ्वीराज रासो* जैसी रचनाओं में वीरता, शौर्य और सांस्कृतिक स्मृति का चित्रण मिलता है। यद्यपि इस प्रकार के साहित्य में इतिहास और काव्य-कल्पना का मिश्रण है, फिर भी यह तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम है। इस दृष्टि से आदिकालीन साहित्य का महत्व केवल साहित्यिक इतिहास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह तत्कालीन समाज की सांस्कृतिक स्मृति और जीवन-मूल्यों के संरक्षण में भी सहायक रहा है।

7.2 भक्तिकाल : भारतीय ज्ञान-परंपरा का लोकव्यापीकरण

भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन में भक्तिकाल की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भक्तिकालीन कवियों ने जटिल धार्मिक एवं दार्शनिक अवधारणाओं को लोकभाषा में प्रस्तुत करके उन्हें सामान्य जन तक पहुँचाया। भक्तिकाव्य

का महत्व केवल धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति में नहीं है, बल्कि इसमें लोकचेतना, सामाजिक अनुभव, नैतिकता और मानवीय संबंधों का भी व्यापक संसार उपस्थित है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भक्तिकाव्य को लोकचिंता और सामाजिक परिस्थितियों से जोड़कर देखने पर बल दिया है।³

कबीर ने बाह्य आडंबर, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक भेदभाव का विरोध करते हुए मानवता तथा आंतरिक चेतना को महत्व दिया। उनके साहित्य में ज्ञान, अनुभव और आत्मबोध की महत्ता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

कबीर का प्रसिद्ध दोहा है—

“साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदै साँच है, ताकै हृदय आप॥”⁴

कबीर की वाणी में सत्य, आत्मानुभूति और विवेक को विशेष महत्व प्राप्त है। उन्होंने ज्ञान को केवल शास्त्रीय अधिकार न मानकर अनुभव और आत्मबोध से जोड़ा। तुलसीदास ने *रामचरितमानस* के माध्यम से रामकथा को लोकभाषा में प्रस्तुत करते हुए भारतीय सांस्कृतिक, नैतिक और आदर्शवादी मूल्यों को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाया। उनके साहित्य में मर्यादा, कर्तव्य, लोकमंगल, पारिवारिक संबंध और सामाजिक जीवन से संबंधित अनेक मूल्य दिखाई देते हैं।

तुलसीदास की पंक्तियाँ हैं—

“धर्म तें बिरति, जोग तें ग्याना।

ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥”⁹

यहाँ धर्म, वैराग्य और ज्ञान के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट किया गया है।

तुलसीदास की दोहावली में भी भक्ति और जीवन-दृष्टि का समन्वय दिखाई देता है—

“लोग मगन सब जोग हीं, जोग जायँ बिनु छेम।

त्योँ तुलसी के भावगत, राम प्रेम बिनु नेम॥”¹⁰

सूरदास ने कृष्णभक्ति के माध्यम से प्रेम, वात्सल्य और भक्ति की भावधारा को समृद्ध किया। उनके साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के साथ मानवीय भावनाओं का गहरा चित्रण मिलता है। मीराबाई ने ईश्वर के प्रति समर्पण, आत्मिक स्वतंत्रता और भक्ति की भावना को सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया।

इस प्रकार भक्तिकालीन साहित्य ने ज्ञान को विशिष्ट वर्ग तक सीमित न रखकर लोकभाषा के माध्यम से व्यापक समाज तक पहुँचाया। यही भक्तिकाल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है।

7.3 रीतिकाल : कला, काव्यशास्त्र और सौंदर्यबोध की परंपरा

रीतिकाल को सामान्यतः श्रृंगार एवं रीति-प्रधान साहित्य का काल माना जाता है, किंतु भारतीय ज्ञान-परंपरा के संदर्भ में इसका अध्ययन केवल श्रृंगारिकता तक सीमित नहीं होना चाहिए। रीतिकालीन कवियों ने काव्यशास्त्र, अलंकार, रस, छंद और काव्य-सौंदर्य की परंपरा को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया।

केशवदास, बिहारी तथा अन्य कवियों ने हिंदी काव्य की कलात्मक एवं सौंदर्यशास्त्रीय परंपरा को समृद्ध किया। बिहारी का प्रसिद्ध दोहा है—



“नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।

अली कली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल॥”¹¹

यह दोहा संक्षिप्तता, बिंबात्मकता और सौंदर्यबोध का उत्कृष्ट उदाहरण है। रीतिकाल में काव्य की तकनीक, भाषा, छंद और अलंकारिक संरचना के विकास ने हिंदी साहित्य की सौंदर्यशास्त्रीय ज्ञान-परंपरा को मजबूत किया। इसलिए रीतिकाल को भारतीय ज्ञान-परंपरा के संदर्भ में केवल शृंगार-काव्य के रूप में देखना उचित नहीं है।

7.4 आधुनिक काल : परंपरा और आधुनिकता का समन्वय

आधुनिक हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान-परंपरा के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण मोड़ प्रस्तुत करता है। इस काल में भारतीय समाज औपनिवेशिक प्रभाव, सामाजिक परिवर्तन और आधुनिक विचारों के संपर्क में आया। ऐसी परिस्थिति में हिंदी साहित्य के सामने सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने तथा आधुनिक मूल्यों को स्वीकार करने की चुनौती थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिंदी भाषा, राष्ट्रीय चेतना और भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं—

“निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥”¹²

इन पंक्तियों में भाषा को ज्ञान, आत्मसम्मान और उन्नति से जोड़ा गया है। हिंदी भाषा के माध्यम से भारतीय समाज में आधुनिक शिक्षा और राष्ट्रीय चेतना को व्यापक बनाने की प्रक्रिया में भारतेन्दु युग का योगदान उल्लेखनीय रहा। द्विवेदी युग में साहित्य को सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा गया। भाषा के परिष्कार के साथ सामाजिक सुधार, नैतिकता, राष्ट्रप्रेम और कर्तव्यबोध जैसे विषयों को महत्व दिया गया।

छायावादी साहित्य में व्यक्ति, प्रकृति, आत्मचेतना और मानवीय संवेदना के साथ भारतीय सांस्कृतिक चेतना के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ और महादेवी वर्मा ने भारतीय जीवन-दृष्टि को आधुनिक संवेदना के साथ अभिव्यक्त किया। महादेवी वर्मा के निबंध-साहित्य में भारतीय समाज, स्त्री-जीवन, संवेदना और मानवीय संबंधों का गंभीर विवेचन मिलता है।¹³

प्रेमचंद के साहित्य में भारतीय समाज का यथार्थ, ग्रामीण जीवन, नैतिक संघर्ष, सामाजिक विषमता और मानवीय संवेदना सामने आती है। *गोदान* जैसी कृति भारतीय ग्रामीण समाज के जीवन-संघर्षों को व्यापक रूप में प्रस्तुत करती है। प्रेमचंद के साहित्य में किसान, श्रमिक, स्त्री, ग्रामीण समाज तथा आर्थिक-सामाजिक असमानताओं से जुड़े प्रश्नों का यथार्थपरक चित्रण मिलता है।

रामधारी सिंह ‘दिनकर’ ने भारतीय संस्कृति, राष्ट्रवाद और मानवीय मूल्यों का प्रभावशाली चित्रण किया। उनकी कृति *संस्कृति के चार अध्याय* भारतीय सांस्कृतिक चेतना के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।¹⁴

महादेवी वर्मा ने करुणा, संवेदना, नारी-चेतना और मानवीय मूल्यों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रभावी अभिव्यक्ति दी। इस प्रकार आधुनिक हिंदी साहित्य ने भारतीय ज्ञान-परंपरा को आधुनिकता के प्रश्नों से जोड़ने का कार्य किया।

7.5 स्वतंत्रोत्तर हिंदी साहित्य : विविध अनुभवों का समावेश



स्वतंत्रता के बाद हिंदी साहित्य का स्वरूप अधिक व्यापक और बहुआयामी हुआ। इस काल में समाज के विभिन्न वर्गों, समुदायों और हाशिए के अनुभवों को साहित्य में स्थान मिला। नई कहानी, नई कविता, समकालीन कविता, उपन्यास, दलित साहित्य, स्त्री लेखन, आदिवासी विमर्श तथा अन्य साहित्यिक धाराओं ने भारतीय समाज को देखने की नई दृष्टियाँ प्रदान कीं।

इस दौर में भारतीय ज्ञान-परंपरा का अर्थ केवल प्राचीन ज्ञान के संरक्षण तक सीमित न रहकर समाज के विविध अनुभवों और जीवन-सत्यों को समझना भी हो गया। साहित्य ने परंपरा की आलोचनात्मक समीक्षा की और उन सामाजिक मान्यताओं पर प्रश्न उठाए, जो समानता एवं मानवीय गरिमा के विरुद्ध थीं।

नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि में भी आधुनिक कविता और उसके नए मूल्य-मानदंडों पर विचार मिलता है।¹⁵

इस प्रकार आधुनिक और समकालीन हिंदी साहित्य ने भारतीय ज्ञान-परंपरा को लोकतांत्रिक, मानवीय और बहुलतावादी दृष्टि प्रदान करने में योगदान दिया।

8. लोकसाहित्य और भारतीय ज्ञान-परंपरा

भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण में लोकसाहित्य की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, मुहावरे, लोकगाथाएँ और लोकनाट्य किसी समाज के सामूहिक अनुभवों तथा ज्ञान को अभिव्यक्त करते हैं। लोकसाहित्य में कृषि, ऋतु, पारिवारिक संबंध, सामाजिक व्यवहार, प्रकृति, लोकविश्वास, जीवन-संस्कार और नैतिक मूल्यों से संबंधित अनेक अनुभव सुरक्षित रहते हैं। इसका ज्ञान पुस्तकीय न होकर अनुभवजन्य तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने वाला ज्ञान है।

हिंदी क्षेत्र का लोकसाहित्य भारतीय ज्ञान-परंपरा की विविधता को सामने लाता है। लोकभाषाएँ केवल संचार के माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे किसी समाज की सामूहिक स्मृति, अनुभव और ज्ञान की वाहक होती हैं। इसलिए हिंदी साहित्य के अध्ययन में लोकसाहित्य को सम्मिलित करना आवश्यक है। लोकसाहित्य में प्रकृति और मानव के पारस्परिक संबंध का भी व्यापक चित्रण मिलता है। ऋतु-गीत, कृषि-गीत, विवाह-गीत, संस्कार-गीत तथा लोककथाएँ जीवन के विविध चरणों से संबंधित सामूहिक ज्ञान को सुरक्षित रखती हैं। इस प्रकार लोकसाहित्य को भारतीय ज्ञान-परंपरा का जीवंत अभिलेख माना जा सकता है।

9. हिंदी साहित्य और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण

हिंदी साहित्य ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। परिवार, समाज, करुणा, सह-अस्तित्व, कर्तव्य, त्याग, प्रेम, लोकमंगल और मानवीय गरिमा जैसे मूल्य हिंदी साहित्य में बार-बार दिखाई देते हैं। रामकथा और कृष्णकथा से लेकर भक्तिकाव्य तथा आधुनिक उपन्यासों तक भारतीय समाज के मूल्य निरंतर साहित्यिक अभिव्यक्ति प्राप्त करते रहे हैं। साहित्य ने इन मूल्यों को केवल दोहराया नहीं, बल्कि बदलते समय में उनकी उपयोगिता और सीमाओं पर विचार भी किया।

रहीम का निम्नलिखित दोहा मानवीय संबंधों की परीक्षा को जीवन की कठिन परिस्थितियों से जोड़ता है—

“कहि रहीम संपत्ति सगे, बनत बहुत बहु रीत।

बिपति कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत॥”¹⁶



यह दोहा अनुभवजन्य जीवन-ज्ञान का उदाहरण है। साहित्य ऐसे जीवनानुभवों को स्मृति और भाषा में सुरक्षित रखता है।

इसी प्रकार—

“जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।

रहिमन मछरी नीर को तऊ न छाँड़ति छोह॥”¹⁷

यह दोहा मनुष्य और उसके जीवन-परिवेश के संबंध को प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त करता है।

इस प्रकार हिंदी साहित्य परंपरा के संरक्षण के साथ-साथ उसके आलोचनात्मक मूल्यांकन का भी माध्यम बना है। साहित्य ने जहाँ एक ओर सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखा, वहीं दूसरी ओर रूढ़ियों और असमानताओं की आलोचना करके परंपरा को अधिक मानवीय एवं न्यायपूर्ण बनाने का प्रयास भी किया।

10. हिंदी साहित्य और भारतीय ज्ञान-परंपरा का संवर्धन

हिंदी साहित्य का योगदान केवल अतीत के संरक्षण तक सीमित नहीं है। साहित्य ने भारतीय ज्ञान-परंपरा में नए विचारों का समावेश भी किया है। भक्ति साहित्य ने आध्यात्मिकता को लोकजीवन से जोड़ा, आधुनिक साहित्य ने भारतीय संस्कृति को राष्ट्रीय चेतना से जोड़ा और समकालीन साहित्य ने परंपरा को समानता, न्याय, स्त्री-स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय तथा मानवाधिकार जैसे प्रश्नों के संदर्भ में देखा।

इस दृष्टि से हिंदी साहित्य परंपरा और आधुनिकता के बीच संवाद स्थापित करता है। वह अतीत को वर्तमान से जोड़ते हुए भविष्य के लिए नई वैचारिक संभावनाएँ प्रस्तुत करता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा का संवर्धन तभी संभव है जब परंपरा को आलोचनात्मक दृष्टि से समझा जाए। साहित्य इस आलोचनात्मक विवेक को विकसित करने में सहायक होता है। वह परंपरा के उपयोगी एवं मानवीय तत्वों को सुरक्षित रखते हुए उन तत्वों पर प्रश्न उठाता है जो समय की कसौटी पर अप्रासंगिक अथवा अन्यायपूर्ण सिद्ध होते हैं।

11. समकालीन संदर्भ में हिंदी साहित्य की भूमिका

आज वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और तीव्र सामाजिक परिवर्तन के कारण पारंपरिक ज्ञान के अनेक रूपों के सामने संरक्षण की चुनौती उत्पन्न हुई है। नई पीढ़ी और पारंपरिक ज्ञान के बीच दूरी बढ़ रही है। ऐसे समय में साहित्य की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। डिजिटल माध्यमों, ई-पुस्तकों, ऑनलाइन पत्रिकाओं, ऑडियोबुक तथा अन्य डिजिटल माध्यमों के द्वारा हिंदी साहित्य नई पीढ़ी तक पहुँच रहा है। इससे भारतीय सांस्कृतिक एवं ज्ञान-परंपरा को नए माध्यमों द्वारा सुरक्षित एवं प्रसारित करने की संभावनाएँ बढ़ी हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी भारतीय भाषाओं, संस्कृति, परंपरा और भारतीय ज्ञान-प्रणालियों को शिक्षा के व्यापक संदर्भ में महत्व देती है। शिक्षा मंत्रालय से संबंधित दस्तावेजों में भारतीय ज्ञान-प्रणालियों, भारतीय भाषाओं, कला एवं संस्कृति तथा पारंपरिक ज्ञान को शिक्षा से जोड़ने पर बल दिया गया है।¹⁸

इस संदर्भ में हिंदी साहित्य विद्यालय और उच्च शिक्षा के स्तर पर भारतीय ज्ञान-परंपरा से संबंधित सामग्री को विद्यार्थियों तक पहुँचाने का प्रभावी माध्यम बन सकता है। साहित्यिक कृतियों के अध्ययन से विद्यार्थी केवल इतिहास या संस्कृति के बारे में जानकारी प्राप्त नहीं करते, बल्कि वे उन मूल्यों और अनुभवों को संवेदनात्मक स्तर पर भी समझ सकते हैं।



समकालीन हिंदी साहित्य को भारतीय ज्ञान-परंपरा का पुनर्पाठ करते हुए यह देखना होगा कि प्राचीन ज्ञान में से कौन-से मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं और उन्हें वर्तमान सामाजिक जीवन में किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है। इस संदर्भ में हिंदी साहित्य का दायित्व केवल अतीत का गौरवगान करना नहीं, बल्कि परंपरा और वर्तमान के बीच सार्थक संवाद स्थापित करना भी है।

12. चुनौतियाँ

भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं—

1. युवा पीढ़ी और पारंपरिक ज्ञान के बीच बढ़ती दूरी।
2. लोकभाषाओं एवं बोलियों का कमजोर होना।
3. मौखिक परंपराओं का धीरे-धीरे समाप्त होना।
4. पारंपरिक ज्ञान का पर्याप्त दस्तावेजीकरण न होना।
5. आधुनिक शिक्षा में भारतीय ज्ञान-परंपरा का सीमित समावेश।
6. परंपरा को केवल अतीत की वस्तु मानने की प्रवृत्ति।
7. डिजिटल माध्यमों पर प्रमाणिक एवं व्यवस्थित सामग्री का अभाव।
8. विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान-संपदा के बीच पर्याप्त संवाद का अभाव।
9. लोकज्ञान के व्यवस्थित संकलन एवं अभिलेखीकरण की कमी।
10. परंपरा और आधुनिकता को परस्पर विरोधी मानने की प्रवृत्ति।

इन चुनौतियों के बीच हिंदी साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन, लोकसाहित्य के संकलन, अनुवाद, डिजिटल अभिलेखीकरण और शोध के माध्यम से भारतीय ज्ञान-परंपरा को आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचाया जा सकता है।

13. संभावनाएँ

भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए हिंदी साहित्य में व्यापक संभावनाएँ मौजूद हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य का हिंदी में अनुवाद करके ज्ञान की विविध धाराओं को व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचाया जा सकता है। लोकसाहित्य का संकलन और डिजिटल दस्तावेजीकरण किया जा सकता है। प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य का आधुनिक संदर्भों में पुनर्पाठ किया जा सकता है। विद्यालय एवं उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में भारतीय ज्ञान-परंपरा से संबंधित साहित्य को अधिक स्थान दिया जा सकता है।

डिजिटल तकनीक के माध्यम से दुर्लभ साहित्यिक ग्रंथों, लोकगीतों, लोककथाओं, मौखिक परंपराओं और क्षेत्रीय साहित्य का डिजिटल अभिलेख तैयार किया जा सकता है। इससे वे सामग्री जो केवल सीमित क्षेत्र अथवा समुदाय तक सीमित है, व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँच सकती है। भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान को हिंदी के माध्यम से व्यापक समाज तक पहुँचाया जा सकता है। इसी प्रकार हिंदी साहित्य का अन्य भारतीय भाषाओं और विश्व की भाषाओं में अनुवाद करके भारतीय ज्ञान-परंपरा का वैश्विक प्रसार किया जा सकता है।

इस प्रकार साहित्य परंपरा के संरक्षण के साथ-साथ उसके व्यापक एवं वैश्विक प्रसार का माध्यम भी बन सकता है।

14. निष्कर्ष



भारतीय ज्ञान-परंपरा भारत की सांस्कृतिक एवं बौद्धिक पहचान का महत्वपूर्ण आधार है। यह परंपरा केवल प्राचीन ग्रंथों में सुरक्षित ज्ञान का नाम नहीं है, बल्कि इसमें समाज के दीर्घकालीन अनुभव, जीवन-मूल्य, लोकज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य और सांस्कृतिक स्मृतियाँ सम्मिलित हैं।

हिंदी साहित्य ने इस ज्ञान-परंपरा के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आदिकालीन साहित्य ने सांस्कृतिक एवं वीर परंपराओं को अभिव्यक्ति दी, भक्तिकाल ने आध्यात्मिक और मानवीय मूल्यों को लोकभाषा में व्यापक बनाया, रीतिकाल ने काव्यशास्त्रीय एवं सौंदर्यबोध की परंपरा को समृद्ध किया और आधुनिक साहित्य ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना को राष्ट्रीयता, सामाजिक सुधार, मानवीयता तथा आधुनिक चिंतन से जोड़ा।

कबीर ने सत्य, आत्मबोध और सामाजिक विवेक को लोकभाषा में अभिव्यक्ति दी; तुलसीदास ने रामकथा के माध्यम से धर्म, मर्यादा, लोकमंगल और आदर्श जीवन-मूल्यों को जनमानस तक पहुँचाया; सूरदास और मीराबाई ने प्रेम एवं भक्ति को मानवीय संवेदना से जोड़ा; रहीम ने नीति और जीवन-व्यवहार से जुड़े अनुभवों को दोहों के माध्यम से संरक्षित किया; बिहारी ने काव्यशास्त्रीय एवं सौंदर्यपरक परंपरा को समृद्ध किया; भारतेन्दु ने भाषा और राष्ट्रीय चेतना को महत्व दिया; प्रेमचंद ने भारतीय सामाजिक यथार्थ को साहित्य का विषय बनाया; महादेवी वर्मा ने करुणा, संवेदना और स्त्री-जीवन से जुड़े प्रश्नों को अभिव्यक्ति दी तथा दिनकर ने भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना पर व्यापक चिंतन प्रस्तुत किया।

समकालीन साहित्य ने परंपरा को नए सामाजिक विमर्शों के साथ जोड़कर उसे और अधिक व्यापक बनाया है। भारतीय ज्ञान-परंपरा का संरक्षण इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसके माध्यम से समाज अपने ऐतिहासिक अनुभव, सांस्कृतिक स्मृति और जीवन-मूल्यों से जुड़ा रहता है। किंतु संरक्षण का अर्थ केवल अतीत को जस का तस सुरक्षित रखना नहीं है। संवर्धन के लिए आवश्यक है कि परंपरा का आलोचनात्मक पुनर्पाठ किया जाए और उसके मानवीय, नैतिक, वैज्ञानिक तथा जीवनोपयोगी तत्वों को वर्तमान संदर्भ में पुनर्स्थापित किया जाए।

हिंदी साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने भारतीय ज्ञान-परंपरा को केवल संरक्षित नहीं किया, बल्कि समयानुसार उसकी पुनर्व्याख्या और पुनर्सृजन भी किया। साहित्य ने ज्ञान को लोकभाषा में पहुँचाया, उसे सामाजिक अनुभवों से जोड़ा और नई पीढ़ियों के लिए अर्थपूर्ण बनाया। अतः भारतीय ज्ञान-परंपरा के संरक्षण एवं संवर्धन में हिंदी साहित्य की भूमिका को केवल साहित्यिक योगदान के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक, बौद्धिक और मानवीय योगदान के रूप में देखा जाना चाहिए।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञान-परंपरा का केवल संरक्षक नहीं, बल्कि उसका संवाहक, व्याख्याकार, आलोचक और संवर्धक भी है। हिंदी साहित्य के माध्यम से भारतीय ज्ञान-परंपरा अतीत की स्मृति भर न रहकर वर्तमान की चेतना और भविष्य की संभावनाओं से जुड़ती है। यही उसकी जीवंतता और प्रासंगिकता का आधार है।

संदर्भ-सूची

1. विष्णु पुराण। अंश 1, अध्याय 19, श्लोक 41। गोरखपुर: गीता प्रेस।
2. महोपनिषद्। अध्याय 6, श्लोक 71। गोरखपुर: गीता प्रेस।



3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद। *हिंदी साहित्य की भूमिका* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2019।
4. कबीर। *कबीर ग्रंथावली* संपा. श्यामसुंदर दास। नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, 2013, पृ. 251।
5. रहीम। *स्पर्श, भाग-1* नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी., 2022।
6. रहीम। *रहीम ग्रंथावली* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1985, पृ. 99।
7. *कठोपनिषद्* अध्याय 1, वल्ली 3, मंत्र 14। गोरखपुर: गीता प्रेस।
8. शुक्ल, रामचंद्र। *हिंदी साहित्य का इतिहास* काशी/वाराणसी: नागरीप्रचारिणी सभा।
9. तुलसीदास। *रामचरितमानस* गोरखपुर: गीता प्रेस।
10. तुलसीदास। *दोहावली* गोरखपुर: गीता प्रेस, पृ. 43।
11. बिहारी। *बिहारी सतसई* संपा. डॉ. हरिचरण शर्मा। श्याम प्रकाशन, 2007, पृ. 190।
12. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। *भारतेन्दु ग्रंथावली* वाराणसी: नागरीप्रचारिणी सभा।
13. वर्मा, महादेवी। *श्रृंखला की कड़ियाँ* प्रयागराज/इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2008।
14. दिनकर, रामधारी सिंह। *संस्कृति के चार अध्याय* प्रयागराज/इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2016।
15. सिंह, नामवर। *कविता के नए प्रतिमान* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2018।
16. रहीम। *रहीम ग्रंथावली* वाणी प्रकाशन, 1985।
17. रहीम। *वसंत, भाग-2* नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी., 2022, पृ. 59।
18. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, 2020।